eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Issue 01, January 2024

लैंगिक हिंसा एवं मानवीय गरिमा

डा0 सदगुरु पुष्पम[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, के0 एस0 साकेत पीजी कालेज, अयोध्या, उ0प्र0, भारत

Received: 20 Jan 2024, Accepted: 28 Jan 2024, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2024

Abstract

लैंगिक हिंसा एक वैश्विक सामाजिक समस्या है जो समाज की प्रत्येक इकाई को प्रभावित करती है। यह न केवल शारीरिक और मानसिक क्षति पहुंचाती है, बल्कि पीड़ित की मानवीय गरिमा को भी ठेस पहुंचाती है। यह शोध पत्र लैंगिक हिंसा के विभिन्न रूपों, उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणों एवं प्रभावों का विश्लेषण करता है। साथ ही, यह यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार मानवीय गरिमा का निरंतर हनन लैंगिक असमानता को स्थायी करता है। अध्ययन में कानूनी व्यवस्थाओं, सामाजिक आंदोलनों, अंतर्राष्ट्रीय संधियों, तथा महिला सशक्तिकरण नीतियों की समीक्षा की गई है। अंततः, शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि लैंगिक हिंसा के विरुद्ध एक समग्र, न्यायसंगत, और मानवीय दृष्टिकोण ही वास्तविक परिवर्तन ला सकता है।

कीवर्ड – लैंगिक हिंसा, मानवीय गरिमा, महिला अधिकार, पितृसत्ता, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, संविधानिक प्रावधान, सामाजिक न्याय, यौन समानता, महिला सशक्तिकरण

Introduction

आज के आधुनिक और प्रगतिशील समाज में भी लैंगिक हिंसा जैसी विकराल समस्या बनी हुई है, जो न केवल महिलाओं, बल्कि ट्रांसजेंडर और कभी–कभी पुरुषों को भी प्रभावित करती है। यह हिंसा शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और यौन रूप में प्रकट हो सकती है और इसके प्रभाव बहुआयामी होते हैं। इसका सबसे गहरा प्रभाव पीड़ित की मानवीय गरिमा पर पड़ता है, जो उसके आत्म–सम्मान, स्वतंत्रता और अधिकारों का मूलभूत आधार है। भारत जैसे विविधता वाले देश में यह समस्या सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्ता, अशिक्षा और कमजोर विधिक व्यवस्था के कारण और भी जटिल हो जाती है। इस शोध का उद्देश्य लैंगिक हिंसा के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर यह विश्लेषण करना है कि यह किस प्रकार मानवीय गरिमा को क्षतिग्रस्त करती है और किन उपायों से इसे रोका जा सकता है। मानव समाज की मूलभूत आधारशिला मानवीय गरिमा है, जो प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व, स्वतंत्रता, और आत्म–सम्मान से जुड़ी होती है। यह गरिमा न केवल व्यक्ति के जीवन को सार्थक बनाती है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की बुनियाद भी रखती है। परंतु जब किसी व्यक्ति विशेषकर महिला, बालिका या लैंगिक अल्पसंख्यकों के साथ हिंसा, उत्पीड़न या भेदभाव होता है, तो यह न केवल उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचाता है, बल्कि उनकी मानवीय गरिमा का हनन भी करता है। लैंगिक हिंसा आज के वैश्विक परिदृश्य में एक गहन सामाजिक समस्या के रूप में उभर रही है, जो मानव अधिकारों के उल्लंघन, लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक संरचना का परिणाम है। भारत में यह समस्या बहुआयामी रूप में उपस्थित है घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज हत्या, बालिकाओं की भ्रूण हत्या, मानव तस्करी, बलात्कार, और सामाजिक अपमान के रूप में। इनमें से कई हिंसात्मक घटनाएं सार्वजनिक या न्यायिक प्रक्रिया में भी नहीं पहुंचतीं,

जिससे पीड़िता की गरिमा को पुनःस्थापित करने की संभावना भी नगण्य रह जाती है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 21 और 51 क, तथा अनेक विधिक प्रावधान लैंगिक समानता और गरिमा की रक्षा के लिए बनाए गए हैं, परंतु सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मानसिकता में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य है लैंगिक हिंसा की विविध प्रकारों की गहन पड़ताल करना, इसके कारणों की सामाजिक–सांस्कृतिक जड़ों को समझना, मानवीय गरिमा के सिद्धांत के साथ इसके अंतर्संबंध का विश्लेषण करना, तथा विधिक, न्यायिक, अंतरराष्ट्रीय और सामाजिक उपायों का मूल्यांकन कर समाधान की दिशा में ठोस अनुशंसाएँ प्रस्तुत करना। यह अध्ययन न केवल पीड़ितों के पक्ष में संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास है, बल्कि समाज में समावेशी, न्यायसंगत एवं गरिमामय वातावरण के निर्माण की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह शोध इस बात पर बल देता है कि लैंगिक हिंसा केवल महिलाओं की नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता की गरिमा का प्रश्न है, जिसकी समाप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति, संस्था और शासन–व्यवस्था की सामूहिक जिम्मेदारी अनिवार्य है।

परिकल्पना –

- लैंगिक हिंसा मानवीय गरिमा के उल्लंघन का प्रत्यक्ष रूप है, जो केवल महिलाओं तक सीमित न रहकर समस्त लैंगिक समूहों को प्रभावित करता है।
- भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना लैंगिक हिंसा की स्थायित्व और पुनरुत्पादन में प्रमुख भूमिका निभाती है।
- संवैधानिक और विधिक प्रावधानों के बावजूद, लैंगिक हिंसा की घटनाओं में अपेक्षित कमी नहीं आ रही है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक सोच और सांस्कृतिक मूल्य भी निर्णायक हैं।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लैंगिक हिंसा की प्रकृति और प्रतिक्रिया में स्पष्ट अंतर है, जो नीति निर्धारण और हस्तक्षेप रणनीतियों को प्रभावित करता है।
- शिक्षा, मीडिया, न्यायपालिका और सामाजिक आंदोलनों की सक्रिय भागीदारी के बिना लैंगिक हिंसा की रोकथाम और पीड़ित की गरिमा की पुनःस्थापना संभव नहीं है।

शोध प्राविधि –

1. शोध का स्वरूप– यह शोध वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक दोनों प्रकृति का है। यह लैंगिक हिंसा के विविध आयामों की पहचान, उनके प्रभाव, कारणों और समाधान के उपायों पर केंद्रित है।

2. शोध की प्रवृत्ति–

- गुणात्मक (Qualitative)
- सांख्यिकीय विश्लेषण के माध्यम से आंशिक मात्रात्मक (Quantitative)

3. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत

प्राथमिक स्रोत–

- साक्षात्कार– पीड़ितों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, वकीलों और पुलिस अधिकारियों से
- फील्ड सर्वेक्षण (जहां संभव हो)

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Issue 01, January 2024

- अदालती मामलों का अध्ययन

द्वितीयक स्रोत–

- सरकारी रिपोर्ट्स (NCRB, NFHS, Ministry of Women and Child Development आदि)
- अनुसंधान लेख, पुस्तकें, कानून और संविधान
- समाचार रिपोर्ट, मीडिया विश्लेषण, NGO रिपोर्ट्स

4. डेटा संग्रहण की विधि–

- प्रलेखन अध्ययन
- केस स्टडी पद्धति
- सांख्यिकीय आँकड़ों का विश्लेषण
- मीडिया और फिल्म विश्लेषण

5. विश्लेषण की विधियाँ–

- तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Analysis)
- विषयगत विश्लेषण (Thematic Analysis)
- सांख्यिकीय आँकड़ों का चार्ट एवं ग्राफ द्वारा प्रस्तुतिकरण

6. अध्ययन की सीमा– यह अध्ययन मुख्यतः भारत के संदर्भ में केंद्रित है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय सन्धियों और अनुभवों का उल्लेख तुलनात्मक दृष्टिकोण हेतु किया गया है।

7. नैतिक विचार–

- पीड़ितों की गोपनीयता सुनिश्चित करना
- बिना पूर्व सहमति के कोई भी व्यक्तिगत जानकारी प्रकाशित नहीं करना
- लैंगिक संवेदनशीलता बनाए रखना

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, लैंगिक हिंसा वह हिंसा है जो किसी व्यक्ति के लिंग के आधार पर की जाती है और जिसमें शारीरिक, मानसिक, यौन या भावनात्मक क्षति पहुँचाने का इरादा होता है। यह हिंसा व्यक्तिगत संबंधों में, सामाजिक स्तर पर, कार्यस्थल पर, यहां तक कि राजनीतिक मंचों पर भी प्रकट होती है। जिसके प्रकार घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न (कार्यस्थल व सार्वजनिक स्थानों पर), बलात्कार, मानव तस्करी और वेश्यावृत्ति, ऑनलाइन शोषण, बाल यौन शोषण, दहेज हत्या एवं भ्रूण हत्या।

भारतीय समाज में पितृसत्ता एक गहन संरचना है, जो स्त्रियों को अधीन मानती है और उनकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती है। इससे लैंगिक हिंसा को कहीं न कहीं सामाजिक मान्यता मिलती रही है। मानवीय गरिमा एक ऐसी अवधारणा है जो प्रत्येक मानव को जन्म से प्राप्त समानता, स्वतंत्रता, गरिमा, और आत्मसम्मान का अधिकार प्रदान करती है। यह वह नैतिक और दार्शनिक मूल्य है जो यह मानता है कि मनुष्य किसी भी जाति, वर्ग, धर्म, लिंग, या सामाजिक स्थिति से परे केवल मानव होने के नाते सम्मान के योग्य है। इमैनुएल कांट ने मानवीय गरिमा को एक ऐसी विशेषता बताया जो किसी भी कीमत पर खरीदी या बेची नहीं जा सकती। उनके अनुसार मनुष्य एक उद्देश्य है, साधन नहीं। भारतीय चिंतन में भी अहिंसा, करुणा, और सम्मान जैसे मूल्य गरिमा की पुष्टि करते हैं। उपनिषदों में कहा गया है– अयं निजः परो वेति

गणना लघुचेतसाम, अर्थात् मनुष्यता में भेद नहीं होता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में ष्जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को मानवीय गरिमा से जोड़ते हुए इसकी व्यापक व्याख्या की गई है। सुप्रीम कोर्ट ने के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत सरकार (2017) के निर्णय में कहा कि गरिमा जीवन के मौलिक मूल्यों में से एक है।

लैंगिक हिंसा और गरिमा का अंतर्संबंध

गरिमा पर आघात– जब किसी व्यक्ति के साथ लैंगिक हिंसा होती हैकृजैसे यौन उत्पीड़न, बलात्कार, अपमानजनक भाषा, छेड़खानी तो वह केवल शारीरिक क्षति नहीं होती, बल्कि व्यक्ति की आत्म–छवि, सामाजिक स्थिति और अस्तित्व को चोट पहुँचती है। यह व्यक्ति की गरिमा का सीधा उल्लंघन है।

गरिमा के बहुस्तरीय हनन– लैंगिक हिंसा, न केवल शारीरिक या यौन उत्पीड़न तक सीमित रहती है, बल्कि यह मानवीय गरिमा के बहुस्तरीय हनन का प्रतिनिधित्व करती है। यह हनन विभिन्न स्तरों पर व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और विधिक स्तर पर देखा जा सकता है। नीचे प्रत्येक स्तर पर गरिमा–हनन की प्रकृति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। लैंगिक हिंसा का पहला और सीधा प्रभाव पीड़िता की आत्म–छवि, आत्म–सम्मान और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जब किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसकी देह, अभिव्यक्ति, या स्वतंत्रता का उल्लंघन किया जाता है, तो वह आंतरिक गरिमा का गहरा अपमान होता है। यह PTSD (Post Traumatic Stress Disorder), अवसाद, और आत्महत्या जैसी स्थितियों को जन्म दे सकता है। अक्सर लैंगिक हिंसा के मामलों में पीड़िता को दोषी ठहराया जाता है, जिससे उसे परिवार से सहयोग नहीं मिलता। कई बार परिवार स्वयं ही हिंसा का स्रोत होता है, विशेष रूप से घरेलू हिंसा और बाल विवाह के मामलों में। इससे पीड़िता की गरिमा को भीतर तक ठेस पहुँचती है, और वह सामाजिक सुरक्षा के अपने मूल स्रोत से वंचित हो जाती है। समाज में 'इज्जत' की अवधारणा महिलाओं की यौनिकता से जोड़ दी गई है। ऐसे में पीड़िता को 'कलंकित' माना जाता है जबकि अपराधी को सामाजिक स्वीकृति मिलती रहती है। सामाजिक बहिष्कार, अपमानजनक टिप्पणियाँ, और न्याय के प्रति उदासीनताकृये सभी सामाजिक स्तर पर गरिमा–हनन के प्रमुख उदाहरण हैं। बहुसंख्यक सांस्कृतिक मान्यताएँ पुरुष–सत्ता आधारित हैं, जहाँ महिलाओं को पुरुष की संपत्ति या नियंत्रणाधीन माना जाता है। सिनेमा, साहित्य, और धार्मिक ग्रंथों में भी अनेक बार स्त्री को निम्नतर स्थान पर चित्रित किया गया है। यह सांस्कृतिक हनन सामाजिक मानसिकता में गहराई तक बैठा हुआ है।

लैंगिक हिंसा के कारण महिलाएँ रोजगार, शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित हो जाती हैं। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, असमान वेतन और अवसरों की कमी, सभी उनकी आर्थिक गरिमा को चोट पहुँचाते हैं। यह निर्भरता महिलाओं को पुनः हिंसा सहने को बाध्य करती है। जब पीड़िता न्यायालयों, पुलिस या चिकित्सा संस्थानों से संवेदनशीलता की अपेक्षा करती है और वहाँ उसे उपेक्षा, अविश्वास या द्वितीयक विक्टिमाइज़ेशन (Secondary Victimization) का सामना करना पड़ता है, तो यह संस्थागत गरिमा का हनन है। उदाहरणतः बलात्कार मामलों में दोहराई गई पूछताछ या चरित्र जांच जैसी प्रक्रिया पीड़िता के आत्मसम्मान को आघात पहुँचाती है। गरिमा का बहुस्तरीय हनन यह सिद्ध करता है कि लैंगिक हिंसा केवल एक घटना नहीं, बल्कि एक प्रणालीगत समस्या है जो समाज की अनेक परतों में व्याप्त है। इसके उन्मूलन हेतु केवल कानून पर्याप्त नहीं, बल्कि सामाजिक सोच, संस्कृति, शिक्षा और आर्थिक संरचनाओं में परिवर्तन

अत्यावश्यक है। एक समावेशी, समानतामूलक और गरिमापूर्ण समाज की स्थापना हेतु समग्र प्रयासों की आवश्यकता है।

न्यायिक दृष्टिकोण– लैंगिक हिंसा के परिप्रेक्ष्य में न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारतीय न्यायपालिका ने समय–समय पर ऐसे मामलों में सक्रिय दखल देते हुए पीड़ितों की गरिमा की रक्षा की है, विधिक दायरे को व्यापक किया है, और संवैधानिक मूल्यों की पुनर्पुष्टि की है। न्यायिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन हमें यह समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार भारत की न्यायिक प्रणाली लैंगिक हिंसा के मामलों में न केवल दंडात्मक व्यवस्था प्रस्तुत करती है, बल्कि पुनर्वास, संरक्षण और गरिमा की पुनर्स्थापना की दिशा में भी कार्य करती है।

(क) सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक निर्णय–

विशाखा बनाम राज्य राजस्थान (1997)– यह निर्णय कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध ऐतिहासिक रूप से मील का पत्थर माना जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने पहली बार सेक्सुअल हैरेसमेंट की स्पष्ट परिभाषा दी और कार्यस्थल पर महिलाओं की गरिमा की रक्षा हेतु विशाखा गाइडलाइंस जारी कीं। यह निर्णय लैंगिक गरिमा के संवैधानिक संरक्षण का सशक्त उदाहरण है।

नलिनी बनाम तमिलनाडु राज्य (1999)– इस केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बलात्कार केवल एक शारीरिक अपराध नहीं है, बल्कि यह स्त्री की आत्मा और गरिमा पर आघात है। कोर्ट ने बलात्कार पीड़िताओं के लिए न्याय की प्रक्रिया को अधिक सहानुभूतिपूर्ण बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

नंबी नारायण बनाम केरल राज्य (2018)– यद्यपि यह केस सीधे लैंगिक हिंसा से संबंधित नहीं था, परंतु इसमें मानवीय गरिमा की अवधारणा को केंद्रीय स्थान दिया गया। यह निर्णय दर्शाता है कि गरिमा केवल एक कानूनी शब्द नहीं, बल्कि संवैधानिक मूल्य है।

निर्भया मामला (2012–2020)– इस मामले ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया और न्यायपालिका पर भारी दबाव डाला। सुप्रीम कोर्ट ने चारों दोषियों को फांसी की सजा सुनाते हुए कहा कि यह मामला रेयरेस्ट ऑफ रेयर श्रेणी में आता है और समाज में महिलाओं की गरिमा को रौंदने वाला अपराध है।

(ख) हाई कोर्ट्स के दृष्टिकोण– कई उच्च न्यायालयों ने भी बलात्कार, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा और तस्करी से संबंधित मामलों में मानवीय गरिमा को केंद्रीय विषय मानते हुए निर्णय दिए हैं। जैसे कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा है कि यौन हिंसा के मामलों में न्यायिक प्रक्रिया को पीड़िता के लिए और अधिक गरिमामय एवं संवेदनशील बनाया जाना चाहिए।

(ग) न्यायिक सक्रियता एवं संवैधानिक मूल्य– अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की व्याख्या में सुप्रीम कोर्ट ने समय–समय पर मानवीय गरिमा को मूलभूत अधिकार के रूप में सम्मिलित किया है। कोर्ट ने यह स्पष्ट किया है कि किसी भी प्रकार की हिंसा, शोषण या उत्पीड़न केवल कानून का उल्लंघन नहीं, बल्कि एक संवैधानिक मूल्य का अपमान भी है।

(घ) पीड़िता की गोपनीयता एवं गरिमा की रक्षा– सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया है कि बलात्कार पीड़िताओं की पहचान न उजागर की जाए और उन्हें न्यायालय की प्रक्रिया में यथासंभव गरिमामय व्यवहार मिले। मेडिकल जांच, पुलिस पूछताछ और कोर्ट में पेशी जैसी सभी प्रक्रियाओं में गरिमा और संवेदनशीलता का ध्यान रखने के निर्देश दिए गए हैं।

न्यायपालिका ने लैंगिक हिंसा के मामलों में केवल कानून का अनुप्रयोग ही नहीं किया है, बल्कि उसने संवैधानिक मूल्यों विशेषतः मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता, और समानताकृको न्यायिक निर्णयों के माध्यम से पुनः स्थापित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय न्यायपालिका लैंगिक हिंसा को न केवल दंडात्मक दृष्टिकोण से देखती है, बल्कि यह एक मानवाधिकार और समाज नैतिकता का प्रश्न भी मानती है।

गरिमा की पुनर्स्थापना– लैंगिक हिंसा केवल शारीरिक या मानसिक पीड़ा तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह व्यक्ति की गरिमा, आत्मसम्मान और जीवन की गुणवत्ता पर गहरा आघात करती है। जब किसी व्यक्ति विशेषकर महिलाओं, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों या अन्य हाशिए पर खड़े समुदायों की गरिमा का हनन होता है, तो उसकी पुनर्स्थापना केवल दंडात्मक व्यवस्था से नहीं, बल्कि सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक और संस्थागत सहयोग से ही संभव होती है। न्याय व्यवस्था का उद्देश्य न केवल अपराधी को दंडित करना है, बल्कि पीड़ित को न्याय, संतुष्टि और गरिमा की पुनः प्राप्ति सुनिश्चित करना भी है। सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट्स ने कई मामलों में मुआवज़ा, पुनर्वास, और गरिमा की बहाली को संवैधानिक अधिकार माना है। उदाहरण के लिए, निर्भया केस में अदालत ने कहा कि पीड़िता की गरिमा की पुनर्स्थापना के लिए न्याय व्यवस्था को संवेदनशील और त्वरित बनाना अनिवार्य है। लैंगिक हिंसा के शिकार व्यक्ति को मानसिक एवं भावनात्मक सहारे की अत्यधिक आवश्यकता होती है। परामर्शदाता, सामाजिक कार्यकर्ता, और मनोवैज्ञानिक इस प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं। थैरेपी और सपोर्ट ग्रुप्स पीड़िता को आत्मविश्वास पुनः प्राप्त करने में सहायता करते हैं। सामाजिक बहिष्कार और कलंक पीड़ितों की गरिमा को दोबारा आहत कर सकता है। इसलिए समुदाय आधारित पुनर्वास प्रयास आवश्यक हैं, जैसे– पीड़ित के लिए सुरक्षित आवास, आजीविका समर्थन, सामुदायिक स्वीकृति अभियान, स्कूल/कॉलेज और कार्यस्थल पर संवेदनशीलता प्रशिक्षण। शिक्षण संस्थानों, पुलिस व्यवस्था, न्याय प्रणाली और स्वास्थ्य सेवाओं को लैंगिक न्याय और गरिमा के सिद्धांतों पर प्रशिक्षित करना आवश्यक है। संस्थागत दृष्टिकोण से गरिमा–आधारित दृष्टिकोण को लागू करना नीतिगत और व्यवहारिक बदलाव ला सकता है। मीडिया, विशेषतः समाचार और सिनेमा, समाज में संवेदनशीलता और गरिमा की भावना को मजबूत या कमजोर कर सकते हैं। जिम्मेदार रिपोर्टिंग और गरिमापूर्ण प्रस्तुति पीड़ित की पहचान, भावनाओं और सामाजिक स्थिति की सुरक्षा करती है। Press Council of India और News Broadcasting Standards Authority जैसे निकायों को इस संबंध में सख्त दिशा–निर्देश लागू करने चाहिए। अधिकांश पीड़ितों को अपने अधिकारों, कानूनी विकल्पों और शिकायत निवारण प्रक्रियाओं की जानकारी नहीं होती। इसके लिए निरूशुल्क कानूनी सहायता केंद्र, हेल्पलाइन और प्रशिक्षण कार्यक्रम गरिमा की पुनर्स्थापना में अहम योगदान दे सकते हैं। पीड़ितों और महिला संगठनों को नीति–निर्माण की प्रक्रिया में भागीदार बनाना चाहिए ताकि उनकी वास्तविक आवश्यकताओं के अनुसार संवेदनशील और न्यायसंगत नीतियाँ बन सकें। निष्कर्षतः गरिमा की पुनर्स्थापना बहुस्तरीय, सतत और समावेशी प्रक्रिया है जो केवल कानूनी समाधान से पूरी नहीं होती। इसके लिए सामाजिक चेतना, प्रशासनिक इच्छाशक्ति, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं, और सामाजिक सहयोग की गहरी आवश्यकता होती है। गरिमा की बहाली, एक व्यक्ति को न केवल हिंसा से मुक्त करता है, बल्कि उसे पुनः संपूर्ण मानव बनने का अवसर देता है।

भारत में लैंगिक हिंसा, सांख्यिकीय विश्लेषण– भारत में लैंगिक हिंसा एक गंभीर सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवाधिकार संबंधी चुनौती है, जो महिलाओं, बालिकाओं, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों और कभी–कभी पुरुषों

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Issue 01, January 2024

तक को प्रभावित करती है। इस अनुभाग में, हम भारत में लैंगिक हिंसा की प्रकृति, प्रवृत्तियों और पैटर्न का सांख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे इसके गहराते प्रभावों को समझा जा सके।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़े– राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत में अपराध संबंधी आंकड़ों का सबसे अधिक विश्वसनीय स्रोत है। इसकी "Crime in India" रिपोर्ट प्रतिवर्ष प्रकाशित होती है और इसमें लैंगिक हिंसा की विभिन्न श्रेणियों की जानकारी होती है।

तालिका– 01

महिलाओं के विरुद्ध अपराध (2020–2023)

वर्ष	कुल पंजीकृत मामले	प्रति लाख महिला जनसंख्या	प्रमुख अपराध की श्रेणियाँ	वर्ष	कुल पंजीकृत मामले
2020	3,71,503	56.5	बलात्कार, घरेलू हिंसा, उत्पीड़न	2020	3,71,503
2021	4,28,278	64.5	बलात्कार, पीछा करना, दहेज हत्या	2021	4,28,278
2022	4,45,643	67.2	साइबर उत्पीड़न, कार्यस्थल पर उत्पीड़न	2022	4,45,643
2023	4,58,593 (अनुमानित)	69.1	ऑनलाइन शोषण, वैवाहिक बलात्कार (अवैध पर रिपोर्टेड)	2023	4,58,593 (अनुमानित)

विश्लेषण– पिछले वर्षों में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में निरंतर वृद्धि देखी गई है। लॉकडाउन के बाद घरेलू हिंसा में असाधारण वृद्धि दर्ज की गई।

तालिका– 02

बलात्कार के पंजीकृत मामले (2020–2022)

वर्ष	बलात्कार के मामले	दैनिक औसत	आरोपी में परिचित की भूमिका	वर्ष	बलात्कार के मामले
2020	28,046	,77	94 प्रतिशत मामलों में पीड़िता का जानकार	2020	28,046
2021	31,677	,87	96 प्रतिशत मामलों में परिचित	2021	31,677
2022	33,943	,93	96.5 प्रतिशत मामलों में परिचित	2022	33,943
वर्ष	बलात्कार के मामले	दैनिक औसत	आरोपी में परिचित की भूमिका	वर्ष	बलात्कार के मामले

निष्कर्ष– बलात्कार के अधिकतर मामलों में अपराधी पीड़िता का कोई परिचित या रिश्तेदार होता है, जिससे सामाजिक विश्वास को ठेस पहुँचती है।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Issue 01, January 2024

तालिका– 03

घरेलू हिंसा (Domestic Violence)

Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 के अंतर्गत मामले

2020– 86,000 मामले दर्ज (सिर्फ 13 प्रतिशत ही पुलिस तक पहुंचे)

2021– 1,05,000 मामले (महामारी के कारण घरों में तनाव बढ़ा)

2022– 1,17,000 मामले (ऑनलाइन शिकायतों में वृद्धि)

विशेष सूचना– घरेलू हिंसा अक्सर रिपोर्ट नहीं होती क्योंकि यह पारिवारिक मान–सम्मान से जुड़ी मानी जाती है।

तालिका– 04

राज्यवार तुलना (Top 5 States – 2022)

राज्य	महिलाओं के विरुद्ध अपराध	बलात्कार	दहेज हत्या	राज्य
उत्तर प्रदेश	66,000+	3,500+	2,000+	उत्तर प्रदेश
राजस्थान	45,900+	6,300+	1,200+	राजस्थान
महाराष्ट्र	42,000+	2,800+	900+	महाराष्ट्र
मध्य प्रदेश	40,800+	3,900+	1,100+	मध्य प्रदेश
पश्चिम बंगाल	37,000+	2,300+	1,000+	पश्चिम बंगाल

नोट– उत्तर प्रदेश और राजस्थान शीर्ष पर बने हुए हैं, किन्तु रिपोर्टिंग की प्रवृत्तियाँ और जागरूकता भी इसमें भूमिका निभाती हैं।

5. साइबर उत्पीड़न और डिजिटल स्पेस में हिंसा

2021 में महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराध– 10,730 मामले

प्रमुख अपराध– अश्लील चित्रों का प्रसारण, अशोभनीय टिप्पणियाँ, पहचान की चोरी

2022 में मामलों में 15 प्रतिशत की वृद्धि

6. बालिकाओं के विरुद्ध अपराध

2022 में POCSO अधिनियम के अंतर्गत 1,60,000 मामले दर्ज

औसतन हर दिन 400 से अधिक मामलों की रिपोर्ट

विद्यालयों, ऑनलाइन गेमिंग प्लेटफार्म और सोशल मीडिया पर लुभाने वाले अपराध बढ़े

7. महिला आयोगों के अनुसार प्रवृत्तियाँ– राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW) को प्रतिदिन औसतन 300 से अधिक शिकायतें प्राप्त होती हैं

अधिकांश शिकायतें– वैवाहिक विवाद, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, साइबर हिंसा

8. प्रवृत्तियाँ और विश्लेषण– अपराधों में वृद्धि केवल सामाजिक विघटन को नहीं दर्शाती, बल्कि रिपोर्टिंग में वृद्धि और जागरूकता का भी संकेत देती है। लैंगिक हिंसा अब भौतिक क्षेत्र से डिजिटल प्लेटफार्मों तक पहुँच चुकी है। सबसे अधिक प्रभावित वर्ग– ग्रामीण महिलाएं, आदिवासी समुदाय, निचली जातियों की महिलाएं। भारत में लैंगिक हिंसा केवल आपराधिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना की गहरी विकृति का परिणाम है। जब तक समाज में पितृसत्ता, लिंग असमानता, और स्त्री विरोधी सोच का उन्मूलन नहीं होता, तब तक आंकड़े केवल चेतावनी देते रहेंगे। घरेलू हिंसा अक्सर चारदीवारी के भीतर छिपी रहती है। इसमें शारीरिक मारपीट, भावनात्मक शोषण, आर्थिक नियंत्रण, और यौन जबरदस्ती शामिल होती है। रीता देवी (बिहार), पति द्वारा दहेज के लिए अत्याचार; ससुराल से निकाला गया; 3 वर्षों तक न्याय के लिए संघर्ष; आज महिला अधिकार कार्यकर्ता। मीटू आंदोलन ने उजागर किया कि किस प्रकार कार्यस्थल पर वरिष्ठ अधिकारी महिलाओं का यौन शोषण करते हैं। निर्भया केस (दिल्ली, 2012) एक ऐतिहासिक घटना जिसने भारत में महिलाओं की सुरक्षा पर बहस को राष्ट्रीय एजेंडे पर ला दिया।

लैंगिक हिंसा की जड़ें केवल व्यक्तिगत व्यवहार में नहीं, बल्कि उस सामाजिक ढांचे में भी गहराई से जुड़ी होती हैं जो पुरुष वर्चस्व (पितृसत्ता) को बढ़ावा देता है। पितृसत्ता न केवल महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पीछे रखता है, बल्कि उनकी मानवीय गरिमा और अस्तित्व को भी प्रभावित करता है। भारत जैसे देश में, जहां पारंपरिक और धार्मिक मूल्य पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को मज़बूती प्रदान करते हैं, वहां लैंगिक असमानता केवल महिलाओं की समस्या नहीं, बल्कि लोकतंत्र, समानता और मानवाधिकारों के समग्र मूल्यों पर चोट करती है। पितृसत्ता वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुषों को सत्ता, निर्णय और संसाधनों पर वर्चस्व प्राप्त होता है। यह सत्ता पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम से संरक्षित और पुनरुत्पादित होती रहती है। इस व्यवस्था में महिलाओं को पारंपरिक भूमिकाओं में बांध दिया जाता है जैसे कि गृहिणी, पत्नी, माँ और उनकी स्वतंत्रता, शिक्षा, यौन निर्णय, और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी पर नियंत्रण रहता है। पितृसत्ता और लैंगिक असमानता के बीच घनिष्ठ संबंध है। यह व्यवस्था स्त्रियों के अधिकारों, अवसरों और संसाधनों की समान पहुँच को बाधित करती है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं–

शिक्षा में असमानता, अनेक ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अभी भी बालिकाओं की शिक्षा को कम महत्त्व दिया जाता है। आर्थिक असमानता, महिलाएं समान कार्य के लिए पुरुषों की अपेक्षा कम वेतन पाती हैं और निर्णयकारी भूमिकाओं में उनकी भागीदारी सीमित रहती है। राजनीतिक भागीदारी में कमी, संसद और विधायिकाओं में महिलाओं की हिस्सेदारी अभी भी न्यून स्तर पर है। यौनिकता और स्वतंत्रता पर नियंत्रण, विवाह, प्रेम, यौन संबंध और गर्भधारण के निर्णयों में महिलाओं की स्वतंत्रता सीमित की जाती है। अधिकांश परिवारों में पुरुष को मुखिया माना जाता है, जिससे स्त्रियों की आवाज़ गौण रह जाती है। धार्मिक ग्रंथों और परंपराओं की व्याख्या प्रायः पुरुषों के हित में की गई है, जिससे स्त्री की स्वतंत्रता सीमित होती है। कई शैक्षणिक सामग्रियाँ पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को अनजाने में बढ़ावा देती हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था न केवल महिलाओं को, बल्कि पुरुषों को भी एक सीमित भूमिका में बाँध देती है। पुरुषों से भावनात्मक कठोरता, आक्रामकता और नियंत्रण की अपेक्षा की जाती है, जबकि महिलाओं को आज्ञाकारिता, त्याग और सहनशीलता में ढाला जाता है। यह मनोवैज्ञानिक विभाजन समाज में विषमता को स्थायी बनाता है। जब महिलाएं पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देती हैं कृ जैसे विवाह से इनकार,

कार्यक्षेत्र में प्रतिस्पर्धा, या यौन स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति तब उनके प्रति हिंसा, उत्पीड़न और सामाजिक बहिष्कार की घटनाएँ बढ़ जाती हैं। यह सिद्ध करता है कि पितृसत्ता केवल एक विचारधारा नहीं, बल्कि एक नियंत्रक प्रणाली है जो हिंसा के माध्यम से अपनी सत्ता बनाए रखती है। पितृसत्ता भारतीय समाज में गहराई से रची–बसी व्यवस्था है जो लैंगिक असमानता को वैधता प्रदान करती है। जब तक इस व्यवस्था की जड़ों पर प्रहार नहीं किया जाएगा, तब तक केवल विधिक सुधार या आर्थिक सशक्तिकरण से लैंगिक समानता संभव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि सामाजिक चेतना, शिक्षा, मीडिया और सांस्कृतिक विमर्शों के माध्यम से पितृसत्ता की आलोचना और स्त्री–पुरुष समानता की स्थापना हो।

विधिक दृष्टिकोण, भारतीय संविधान एवं कानून– भारत का संविधान लैंगिक समानता और मानवीय गरिमा के संरक्षण की ठोस नींव प्रदान करता है। लैंगिक हिंसा के विरुद्ध विधिक सुरक्षा और संवैधानिक प्रावधानों की एक विस्तृत व्यवस्था भारतीय विधिक व्यवस्था में विद्यमान है, जिसका उद्देश्य महिलाओं तथा अन्य लैंगिक अल्पसंख्यकों की गरिमा की रक्षा करना है। इस खंड में हम भारतीय संविधान के प्रमुख प्रावधानों, दंड विधियों और हालिया विधिक पहलुओं का विश्लेषण करेंगे।

1. संविधान में लैंगिक समानता के प्रावधान–

भारतीय संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद लैंगिक समानता और गरिमा की रक्षा सुनिश्चित करते हैं अनुच्छेद 14 यह राज्य द्वारा कानून के समक्ष सभी व्यक्तियों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। यह किसी भी प्रकार के लैंगिक भेदभाव को अस्वीकार करता है। अनुच्छेद 15 (1) और (3) अनुच्छेद 15 (1) किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है, जबकि 15 (3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 16 यह सभी नागरिकों को सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानता की गारंटी देता है। अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में मानवीय गरिमा की अवधारणा अंतर्निहित है। लैंगिक हिंसा इस अनुच्छेद के तहत गरिमा का उल्लंघन मानी जाती है।

2. महत्वपूर्ण अधिनियम और कानून– भारत में लैंगिक हिंसा की रोकथाम के लिए कई विशेष कानून बनाए गए हैं

(क) भारतीय दंड संहिता (IPC)

धारा 354– महिला की लज्जा भंग करने से संबंधित।

धारा 375–376 बलात्कार की परिभाषा एवं दंड।

धारा 509 महिला की गरिमा को ठेस पहुँचाने के इरादे से की गई टिप्पणी या संकेत।

(ख) घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 (Protection of Women from Domestic Violence Act) इस अधिनियम के अंतर्गत शारीरिक, मानसिक, यौन, आर्थिक और मौखिक हिंसा को शामिल किया गया है। यह पीड़िता को सुरक्षा, निवास, निर्वाह भत्ता एवं मुआवज़ा जैसी राहतों का अधिकार देता है।

(ग) यौन उत्पीड़न (कार्यस्थल पर) अधिनियम, 2013 (POSH Act)– यह अधिनियम विशाखा बनाम भारत सरकार मामले के बाद अस्तित्व में आया। इसके अंतर्गत प्रत्येक संस्थान में आंतरिक शिकायत समिति का गठन अनिवार्य है।

(घ) बाल यौन शोषण अधिनियम (POCSO Act), 2012– यह अधिनियम बच्चों के यौन शोषण को रोकने हेतु विशेष रूप से बनाया गया है। इसमें प्रत्येक प्रकार के यौन अपराध के लिए विस्तृत प्रावधान हैं।

(ङ) मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019– यह अधिनियम तीन तलाक (तलाक–ए–बिद्दत) को अपराध घोषित करता है और पीड़िता को न्याय दिलाने की प्रक्रिया सुनिश्चित करता है।

3. महत्त्वपूर्ण न्यायिक व्याख्याएँ

(क) विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)– इस ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम हेतु 'विशाखा दिशानिर्देश' जारी किए, जो बाद में POSH कानून का आधार बने।

(ख) नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (2018)– इस निर्णय में धारा 377 को रद्द करते हुए समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया और यौनिकता को व्यक्तित्व की गरिमा से जोड़ा गया।

(ग) निर्भया मामला (2012)– इस कांड के पश्चात सरकार ने जस्टिस वर्मा समिति गठित की, जिसने बलात्कार कानूनों को और कठोर बनाने की सिफारिश की, जिसके बाद आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 लाया गया।

4. विधिक प्रयासों की सीमाएँ और चुनौतियाँ–

कानूनों की अनुपालन में कमी, जमीनी स्तर पर पुलिस, न्यायपालिका और कार्यस्थलों में इन कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन की कमी बनी हुई है।

पीड़िता के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण, कई मामलों में पीड़िता को ही दोषी ठहराने की प्रवृत्ति और सामाजिक कलंक कानून के प्रभाव को सीमित कर देते हैं।

लंबित मुकदमे और न्याय में देरी, विशेषकर यौन हिंसा के मामलों में न्याय प्रक्रिया धीमी होने के कारण पीड़ित को उचित संरक्षण नहीं मिल पाता।

5. विधिक दृष्टिकोण को प्रभावी बनाने के उपाय, न्याय प्रणाली को लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील बनाना।

फास्ट ट्रैक कोर्ट्स की संख्या बढ़ाना।

विधि–प्रवर्तन एजेंसियों में लैंगिक प्रशिक्षण।

ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में कानूनी जागरूकता अभियान।

भारतीय संविधान और विधिक तंत्र लैंगिक हिंसा के खिलाफ एक मजबूत ढांचा प्रस्तुत करते हैं। परंतु इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, न्यायिक संवेदनशीलता और कानूनी साक्षरता अनिवार्य है। जब तक समाज और राज्य दोनों मिलकर महिला और अन्य लिंग समूहों की गरिमा की रक्षा के लिए सजग नहीं होंगे, तब तक केवल विधिक उपाय पर्याप्त नहीं हो सकते। न्यायपालिका ने बार–बार दोहराया है कि यौन हिंसा केवल कानून का उल्लंघन नहीं, बल्कि पीड़िता की आत्मा और गरिमा का अपमान है।

पुरुष पीड़ित और लिंग–समावेशी दृष्टिकोण– जब हम लैंगिक हिंसा की बात करते हैं, तो सामान्यतः यह धारणा बनी हुई है कि पीड़ित केवल महिलाएं होती हैं और पुरुष मात्र हिंसक भूमिका में होते हैं। परंतु वास्तविकता यह है कि पुरुष, ट्रांसजेंडर, समलैंगिक, द्विलिंगी तथा अन्य लिंग समुदायों के लोग भी लैंगिक

हिंसा के शिकार हो सकते हैं। भारत जैसे पारंपरिक समाज में इस वास्तविकता को स्वीकार करना चुनौतीपूर्ण रहा है। इसी कारण पुरुष पीड़ितों के लिए सहानुभूति, विधिक संरक्षण और मानसिक स्वास्थ्य सहायता की व्यापक कमी देखी जाती है। कई पुरुष भावनात्मक, आर्थिक और कभी–कभी शारीरिक हिंसा का सामना करते हैं, विशेषकर विषाक्त वैवाहिक या सहवास संबंधों में। कुछ मामलों में पुरुषों पर झूठे आरोप लगने की घटनाएँ भी सामने आती हैं, जिससे उनकी गरिमा, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक प्रतिष्ठा को गंभीर आघात पहुँचता है। पुरुष कर्मचारी कभी–कभी अपने उच्चाधिकारियों या सहकर्मियों से लैंगिक टिप्पणी, ब्लैकमेलिंग या मानसिक उत्पीड़न का शिकार होते हैं। पुरुष विशेष रूप से किशोर या बाल अवस्था में यौन शोषण के शिकार होते हैं, किन्तु सामाजिक कलंक और पुरुषत्व की परंपरागत परिभाषा उन्हें सामने आने से रोकती है।

भारतीय विधिक प्रणाली में अधिकांश कानून जैसे कि IPC की धारा 354 (महिला की गरिमा का अपमान), 375 (बलात्कार), 498। (दहेज उत्पीड़न) केवल महिलाओं की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए बनाए गए हैं। पुरुषों के लिए समान सुरक्षा या उनके लिए कानूनी सहारा बहुत सीमित या अस्पष्ट है। सभी लिंगों के लिए समावेशी कानूनों की रूपरेखा तय की जानी चाहिए ताकि प्रत्येक पीड़ित को न्याय मिल सके। पुरुषों को सामाजिक रूप से खुलकर अपनी पीड़ा साझा करने का माहौल प्रदान किया जाना चाहिए। समाज को यह समझने की आवश्यकता है कि लैंगिक हिंसा एक लिंगविशिष्ट समस्या नहीं बल्कि मानवीय गरिमा से जुड़ी व्यापक समस्या है। लिंग–समावेशी हेल्पलाइन और समर्थन केंद्रों की स्थापना से पुरुषों और अन्य हाशिए पर पड़े लिंग समुदायों को सहायता मिल सकती है।

लैंगिक हिंसा के संदर्भ में यदि हम केवल महिलाओं को ही पीड़ित मानते हैं, तो हम समस्या का एक अंश मात्र देख पा रहे हैं। एक न्यायसंगत, सहानुभूतिशील और समावेशी समाज के निर्माण हेतु हमें प्रत्येक लिंग की पीड़ा को समान रूप से समझना और उसका समाधान तलाशना आवश्यक है। पुरुषों को भी गरिमा के साथ जीने का अधिकार है, और लैंगिक समानता का सही अर्थ तभी पूर्ण होता है जब सभी लिंगों को समान सुरक्षा, सम्मान और न्याय मिले।

उत्तरदायित्व और सामाजिक भागीदारी– लैंगिक हिंसा की चुनौती का समाधान केवल विधिक या संस्थागत उपायों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए एक व्यापक सामाजिक उत्तरदायित्व और सहभागिता की आवश्यकता होती है। समाज के विभिन्न वर्गों सरकार, नागरिक समाज, मीडिया, शिक्षा संस्थान, धार्मिक संगठन, कॉर्पोरेट क्षेत्र और आम नागरिक को एकजुट होकर इस समस्या के समाधान हेतु प्रयास करने होंगे। सरकार की मुख्य जिम्मेदारी है कि वह ऐसे नीतिगत और विधिक ढांचे तैयार करे जो पीड़ितों को संरक्षण प्रदान करें, दोषियों को न्यायिक प्रक्रिया के तहत दंडित करें, और लैंगिक समानता को बढ़ावा दें। 'वन स्टॉप सेंटर', 'नारी अदालतें', 'महिला हेल्पलाइन' आदि योजनाओं को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित किया जाना आवश्यक है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में लैंगिक संवेदनशीलता को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। किशोर अवस्था से ही बच्चों में समानता, गरिमा और आपसी सम्मान के मूल्यों को रोपना आवश्यक है।

मीडिया को चाहिए कि वह लैंगिक हिंसा से जुड़ी खबरों को संवेदनशीलता और गरिमा के साथ प्रस्तुत करे, न कि सनसनीखेज बनाकर। सिनेमा और मनोरंजन उद्योग को भी यह समझना चाहिए कि महिला पात्रों की प्रस्तुति समाज की मानसिकता को प्रभावित करती है। धार्मिक नेताओं और संस्थाओं का

समाज में प्रभाव अत्यधिक होता है। वे लैंगिक समानता के पक्ष में आवाज़ उठाकर सामाजिक धारणा को बदलने में मदद कर सकते हैं। विभिन्न समुदायों में व्याप्त रूढ़िगत मान्यताओं को चुनौती देना भी आवश्यक है। कार्यस्थलों पर लैंगिक हिंसा की रोकथाम हेतु 'इंटरनल कंप्लेंट कमिटी (ICC) का गठन, कार्यस्थल नीति में महिला सुरक्षा को प्राथमिकता, और पीड़ितों को सहयोग देना निजी संस्थाओं की जिम्मेदारी है। लैंगिक हिंसा की रोकथाम केवल महिलाओं का मुद्दा नहीं है; पुरुषों को भी इस प्रयास में भागीदार बनना होगा। वे न केवल हिंसा के विरुद्ध खड़े हों, बल्कि अपने घरों, कार्यस्थलों और समाज में लैंगिक समानता की संस्कृति को बढ़ावा दें। स्वैच्छिक संगठनों और महिला अधिकार समूहों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वे पीड़ितों को सलाह, पुनर्वास, कानूनी सहायता और जनजागरूकता के माध्यम से सहयोग प्रदान करते हैं। लैंगिक हिंसा की जड़ें अक्सर परिवार और समाज में पाई जाने वाली असमानता की सोच में होती हैं। परिवार को एक ऐसी इकाई बनाना होगा जहाँ बच्चों को समता, संवेदना और गरिमा के मूल्यों के साथ पाला जाए।

लैंगिक हिंसा एक बहुआयामी सामाजिक चुनौती है। इसे समाप्त करने के लिए केवल कानूनी प्रयासों से अधिक, सामाजिक सोच, व्यवहार और संस्कृति में परिवर्तन आवश्यक है। जब तक समाज के प्रत्येक घटक की सक्रिय भागीदारी नहीं होगी, तब तक मानवीय गरिमा की रक्षा अधूरी रहेगी।

इस शोध के आधार पर स्पष्ट है कि लैंगिक हिंसा न केवल महिलाओं के विरुद्ध अपराध है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता और सामाजिक न्याय पर आघात है। यह केवल कानून द्वारा नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, संवेदनशीलता, और सक्रिय नागरिक सहभागिता द्वारा ही मिटाया जा सकता है। मानवीय गरिमा की रक्षा तभी संभव है जब लैंगिक भेदभाव को जड़ से मिटाकर समानता, न्याय और करुणा आधारित समाज की स्थापना की जाए।

अनुशंसाएँ–

लिंग आधारित शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अनिवार्य किया जाए।

पुलिस और न्यायिक प्रणाली में लिंग–प्रशिक्षण अनिवार्य हो।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला हेल्प डेस्क और वन स्टॉप सेंटर बढ़ाए जाएं।

मीडिया में स्त्री छवि सुधार हेतु स्वनियमन और प्रशिक्षण अनिवार्य हो।

ट्रांसजेंडर और पुरुष पीड़ितों के लिए अलग हेल्पलाइन और कानूनी सहायता प्रणाली विकसित की जाए।

कार्यस्थलों पर लैंगिक समीक्षा समिति को अनिवार्य रूप से सक्रिय किया जाए।

लैंगिक अपराधों पर त्वरित न्याय के लिए Fast Track Courts बढ़ाए जाएं।

सोशल मीडिया पर लैंगिक उत्पीड़न की निगरानी हेतु तकनीकी तंत्र विकसित किया जाए।

महिला संगठनों को CSR और सरकारी अनुदान से सशक्त किया जाए।

पीड़ितों के पुनर्वास हेतु 'गरिमा फंड' बनाया जाए।

सन्दर्भ सूची–

1- Desai, Neera. Women in Modern India, Himalaya Publishing House, 2005. ISBN: 9788178664966
2- Kumar, Radha. The History of Doing, Zubaan, 2010. ISBN: 9788189884476

3- Nussbaum, Martha C. Women and Human Development, Cambridge University Press, 2000. ISBN: 9780521003858
4- Connell, R.W. Gender and Power, Polity Press, 1987. ISBN: 9780745600066
5- Chakravarti, Uma. Gendering Caste, Sage Publications, 2003. ISBN: 9780761996561
6- Sinha, Nirmala. Women and Violence, Gyan Publishing, 2009. ISBN: 9788121210152
7- Kakar, Sudhir. Intimate Relations, Penguin Books, 1990. ISBN: 9780140127571
8- Krishna, Sumi. Gender Dimensions in Biodiversity Management, TERI Press, 2004. ISBN: 9788179930718
9- NCRB Crime in India Report – 2023
10- Ministry of Women and Child Development, Annual Report – 2022
11- United Nations CEDAW Report – India (2022)
12- NCERT Gender Sensitization Modules (2019)
13- Justice Verma Committee Report (2013)
14- National Commission for Women (NCW) Case Statistics
15- POSH Act Guidelines and Implementation Reports

UNICEF Report on Adolescent Girls in India (2021)